
प्रवचन-१८०, श्लोक-२६५-२६६, गाथा-१५६, रविवार, अषाढ शुक्ल १, दिनांक १३-०७-१९८०

नियमसार, २६५ कलश। कलश है न? २६५

हित्वा भीतिं पशुजनकृतां लौकिकीमात्मवेदी,
शस्ताशस्तां वचन-रचनां घोरसन्सार-कर्त्रीम् ।
मुक्त्वा मोहं कनक-रमणीगोचरं चात्मनात्मा,
स्वात्मन्येव स्थितिमविचलां याति मुक्त्यै मुमुक्षुः॥२६५॥

श्लोकार्थ : आहाहा ! आत्मज्ञानी मुमुक्षु जीव... जिसे आत्मज्ञान हुआ है, वह जीव, मुमुक्षु जीव । पशुजनकृत लौकिक भय को... अर्थात् लोग पशु जैसे हैं, वे कुछ भी बोले । आत्मा की बात करने पर या आत्मा का अनुभव या ज्ञान की बात करने पर कुछ भी बातें करे कि यह पाखण्डी है, ऐसा है, वैसा है, तो उसे सहन करके समता रखना । **आत्मज्ञानी मुमुक्षु जीव पशुजनकृत...** पशुजन-पशु जैसे मनुष्य । जिन्हें कुछ अक्ल नहीं हैं, सत्य-असत्य का विवेक नहीं है । आहाहा ! उनके **भय को तथा...** उनके भय को तज दे । वे क्या कहते हैं ? क्या करेंगे ? आहाहा ! धर्मीजीव को कोई दोष लगा हो और वह दोष किसी ने देखा हो तो वह क्या करे और वापस क्या उछाले ? पशु जैसे - अज्ञानी जैसे । नहीं तो दोष को ढाँकना चाहिए । आहाहा ! उपगूहन आता है न ? समकित का (गुण) । ऐसी बात कोई होवे तो गोपन कर देना चाहिए । और एक यह पशुजन जैसे लोगों के भय को तजकर, उनके भय को तजकर । धर्मी जीव को पशुजन जैसे लोगों की दरकार छोड़कर, **घोर संसार की करनेवाली प्रशस्त-अप्रशस्त वचनरचना को...** आहाहा ! शुभ और अशुभ वचन की रचना घोर संसार का कारण हैं । गजब बात है । उपदेश करना या सुनना, वह वचनरचना-जड़ की रचना है । सूक्ष्म बात है, भाई !

उस **संसार की करनेवाली प्रशस्त-अर्थात् शुभ स्वाध्याय आदि और अशुभ वचनरचना को छोड़कर...** आहाहा ! दुनिया से प्रकार अलग है । कहते हैं, शुभवचन, प्ररूपणा और स्वाध्याय का, वे शुभ वचन भी जड़ हैं । आहाहा ! उन्हें भी छोड़कर । आहाहा ! उपदेश की वाणी को भी कहते हैं जड़ है । आहाहा ! चैतन्य प्रभु में तो कोई विकल्पमात्र ही नहीं है । वह तो निर्विकल्प आनन्दकन्द का पिण्ड है । ऐसा आत्मतत्त्व है । उसमें अल्पता नहीं, अशुद्धता नहीं, अशुद्धता नहीं । अल्पता नहीं, हीनता नहीं, अशुद्धता नहीं ।

पूर्णानन्द का नाथ आत्मा.. आहाहा ! उससे विरुद्ध, वचन की रचना उससे विरुद्ध है । आहाहा ! वाणी जड़ है, भगवान चैतन्य है । लोगों को कठोर लगे । तो फिर सुनना या सुनाना, उपदेश करना (उसका क्या) ? भाई ! वह वाणी, जिसमें—स्वरूप में विकल्प नहीं, जैनस्वरूप जो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है, अतीन्द्रिय शान्तिरस का पिण्ड है । वह पूर्ण है, पवित्र है, अखण्ड है, एकरूप ही है । उसमें कोई वचनरचना है नहीं । आहाहा !

कहते हैं, भाषा अकेले छोड़ने का कहे तो ठीक, परन्तु घोर संसार की करनेवाली... आहाहा! उस प्रशस्त-अप्रशस्त वचनरचना को छोड़कर... आहाहा! कहो, चिमनभाई! वचन को छोड़कर। अब इसे... आहाहा! आत्मा में कहाँ वचन है? आत्मा में कहाँ राग है? आत्मा में कहाँ द्वेष है? आत्मा तो आनन्दकन्द है। आहाहा! कहते हैं, धर्मी जीव को पशुजनकृत लौकिक भय को तथा घोर संसार की करनेवाली प्रशस्त-अप्रशस्त वचनरचना को छोड़कर... आहाहा। दो (बोल हैं)।

कनक-कामिनी सम्बन्धी मोह को तजकर,.... है? वे दो-दो बोल आये। पशुजनकृत लौकिक और प्रशस्त-अप्रशस्त वचन रचना और कनक-कामिनी। आहाहा! सोना और स्त्री आदि। उनके सम्बन्धी मोह। आहाहा! उनके प्रति का झुकाव और मोह। पैसे के प्रति और स्त्री के प्रति.. आहाहा! कनक और कामिनी के प्रति जो झुकाव, मोह, सावधानी तजकर... आहाहा! मुक्ति के लिये... अपने आनन्द का पूर्ण लाभ मिले, ऐसी जो मुक्ति। पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ मिले - ऐसी जो मुक्ति... आहाहा! उसके लिये। स्वर्ग के लिये या पुण्य के लिये - यह बात नहीं की। ओहोहो!

चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ, पूर्ण शान्ति, पूर्ण वीतरागता, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता से भरपूर भगवान का जो मुमुक्षु—आत्मज्ञानी... आहाहा! उसे तो पशुजन जैसे जीवों का भय नहीं रखना। वह क्या करेगा और क्या बोलेंगा। क्यों? प्रशस्त-अप्रशस्त शब्द उसके गिनना। क्योंकि वह भी घोर संसार का कारण है। आहाहा! कठिन लगे। तब उपदेश करना या नहीं? भाई! उपदेश आता है, परन्तु वह करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! उपदेश आता है, परन्तु करने योग्य नहीं। समाधिशतक में यहाँ तक कहा है कि तुझे दूसरे को समझाने का विकल्प उठे, प्रभु! वह पागलपना है। ऐसा आया है। समाधिशतक (में) ऐसा कहते हैं कि दूसरों को समझाने का... आहाहा! विकल्प जो आवे, वह पागलपन है। आहाहा! क्योंकि विकल्प से तुझे नुकसान है। उससे कुछ लाभ सामनेवाले को हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : चारित्र सम्बन्धी पागलपना है। मुनि को विकल्प आवे, वह चारित्र का पागलपना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पागल है, परन्तु वह पागल... यहाँ तो दोष का पागल है। आहाहा! है तो चारित्रदोष। आहाहा! अस्थिरता का दोष। यह तो आवश्यक चलता है न?

निश्चय आवश्यक चलता है न? अवश्य करनेयोग्य क्या है? और नहीं करनेयोग्य क्या है?— यह बात चलती है। निश्चय परमावश्यक। आहाहा! वाणी भी करनेयोग्य आवश्यक— जरूर है—ऐसा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : वाचक तो वाच्य को बतावे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह करनेयोग्य नहीं है, कहते हैं। बतावे, वह सब व्यवहार है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है।

यहाँ तो परमावश्यक—परम अवश्य का क्या है? यह कहीं वाणी परम आवश्यक नहीं है। यह समझाने का विकल्प, वह कहीं परम जरूरी नहीं है। आहाहा! घोर संसार शब्द प्रयोग किया है। आहाहा! प्रशस्त और अप्रशस्त, भली भाषा और खोटी—झूठी, दोनों वचन रचना को छोड़कर। आहाहा! दिगम्बर साधु भारी कड़क और परम सत्य ही कहनेवाले। दुनिया में सुगठितता रहे या न रहे, दुनिया इसे स्वीकार करे या न करे? तब तुम क्यों बोलते हो? ऐसा कहनेवाले मिलें तो उनका सुनना नहीं तुझे। वे पशुजनकृत हैं। आहाहा!

कहने का आशय ऐसा, प्रभु! परम आवश्यक—जरूरी (यह है कि) आत्मा अखण्डानन्द प्रभु की श्रद्धा—ज्ञान और अन्दर रमणता, यह परमावश्यक है। बाकी कुछ कोई आवश्यक नहीं है। आहाहा! व्यवहार के लिये प्रभावना करना, अमुक यह करना... अमुक यह करना... आहाहा! वह सब व्यवहार की रागवाली बात घोर संसार को उत्पन्न करनेवाली है। आहाहा! मुनि कहते हैं, घोर संसार। प्रशस्त। आहाहा! साधारण ने तो सुना न हो। स्थूल प्ररूपणा... आहाहा! वीतराग की कही हुई वाणी, परन्तु वह वाणी जड़ है। आहाहा! इसलिए वह घोर संसार का मूल है। आहाहा!

यहाँ तो स्थिर हो जाने की बात है। बाहर मैं ऐसा करूँगा, बाहर मैं ऐसा करूँगा, फिर ऐसा करूँगा, शास्त्र बनाऊँगा, बनाकर ऐसा बाहर प्रसिद्ध करूँगा, बाहर प्रसिद्ध करके बाहर में महिमा होगी। यह तो अन्दर मिथ्यात्व में रह गया। आहाहा! कठिन कलश आया है। बाबूभाई! आहाहा!

प्रभु! तू कौन है? तू सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर है। सत्चिदानन्द ज्ञान और आनन्द का कन्द है। उसमें राग की गन्ध नहीं, वचन का स्पर्श भी नहीं। राग का तो पर्याय में स्पर्श भी

है। पर्याय में। वाणी को तो पर्याय में स्पर्श भी नहीं। आहाहा! क्योंकि वह तो जड़ द्रव्य है। राग है, वह तो अभी पर्याय में अस्तित्व में है। द्रव्यदृष्टि में नहीं। पर्याय के अस्तित्व में है। वाणी तो इसकी पर्याय के अस्तित्व में भी नहीं। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग है।

कनक-कामिनी... यह पैसे की भी आवश्यकता है इसमें, इसमें पैसा कमाना और उसमें यह पढ़ना, उसमें यह काम करना... आहाहा! यह इनकार करते हैं। कनक अर्थात् पैसा और स्त्री। उस **सम्बन्धी मोह...** अर्थात् सावधानी, उसकी ओर का विकल्प **तजकर...** आहाहा! **अभडछेट** छूने जैसा नहीं है। राग और वाणी को छूने जैसा नहीं है। ऐसा प्रभु तू है। परमानन्द का नाथ तुझे तो परमात्मा ही होना पड़ेगा। तू परमात्मा ही है। सब भगवान है। वस्तु से, शक्ति से, स्वभाव से, सत्त्व से, सत् से, अस्ति से भगवान स्वरूप से आत्मा-परमात्मा सब है। इसलिए भगवान ही तुझे होना पड़ेगा। आहाहा! संसार का उत्साह उतार डाले, ऐसा है।

उसे **तजकर, मुक्ति के लिये...** आहाहा! एक सब आशा छोड़कर **मुक्ति के लिये स्वयं अपने से...** आहाहा! आत्मा, आत्मा से और स्वभाव से। स्वयं आत्मा और स्वयं से अर्थात् अपने स्वभाव से। राग और विकल्प और व्यवहार से नहीं। व्यवहाररत्नत्रय से भी नहीं क्योंकि वह स्वयं नहीं है। आहाहा! **स्वयं अपने से...** अर्थात् स्वभाव से। **अपने में ही...** अपने आनन्दस्वभाव में ही। एकान्त है, लो! **अविचल स्थिति को प्राप्त होते हैं।** इस प्रकार जो करे, वह अविचल स्थिति-मुक्ति को प्राप्त करता है। यह उसका मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। आहाहा! हमने बहुत पुस्तकें बनायीं, बहुत मकान बनाये, मन्दिर बहुत बनाये; इसलिए आत्मा को कुछ (लाभ) होगा, यह सब विकल्प है। आहाहा! इसमें पैसे को भी निकाल दिया, वाणी को भी निकाल दिया। आहाहा! और बोलनेवाले, तत्त्व को न समझे, वे तत्त्व को हीन करने के लिये विरोध करनेवाले, उन लोगों को पशु जैसा गिनकर, उन्हें निकाल दिया। आहाहा!

यह कल आया था न? भाई! १५४ गाथा। वह गाथा दर्शनपाहुड़ में २२वीं है। अभी शाम को बताया था। २२ में। 'जं सक्कड़ तं कीरड़ जं चण स्केड़ तं च सदहणं' उसमें बचाव करना नहीं। नहीं कर सके, उसकी श्रद्धा करना। बचाव करना नहीं कि नहीं, नहीं, नहीं यह तो ऐसा होगा, इसमें ऐसा होगा। आहाहा! **स्वयं अपने से...** ही आत्मा आनन्दस्वरूप

है, वह अतीन्द्रिय आनन्द से अपने में ही... आनन्द में ही अविचल स्थिति को प्राप्त होते हैं। ऐसा करनेवाला अविचल स्थिति-मुक्ति को प्राप्त करता है, लो! ओहोहो! एक कलश में तो कितना डाला है ?

वचनरचना को जड़ घोर संसार का कारण कहा। आहाहा! यह दिगम्बर मुनि कहते हैं। दूसरों का दम नहीं है। दूसरे तो उसे अच्छा लगे... अच्छा लगे, (ऐसा कहे)। पैसा खर्च करो तुम्हारा ऐसा होगा, तुम्हें ऐसा होगा। आहाहा! बनाओ धर्म के स्थान तो धर्म बढ़ेगा, धर्म ऐसा होगा। आहाहा! कुछ पड़ी है इन्हें? पैसे की स्पृहा नहीं, स्त्री की नहीं, शुभाशुभ वचन की नहीं और पशु जैसे जीव सत्य को विरोध करनेवाले ऐसे जीवों की दरकार छोड़कर... आहाहा! अविचल स्थिति को, वह कही, वह स्वयं अपने से (प्राप्त करता है)। जो स्वभाव है, अपने में स्वभाव है, वह अपने से। विभाव अपने में नहीं।

स्वयं अपने से... अर्थात् अपने स्वभाव से स्वभाव को प्राप्त करके। आहाहा! पर्याय में अपने निर्मल स्वभाव से निर्मल स्वभाव को प्राप्त करके। विभाव की बात नहीं। आहाहा! ऐसा तो एकान्त लगे। साधारण सम्प्रदाय के आग्रही हों, उन्हें ऐसा हो, यह एक ही मार्ग होगा? यह सब कुछ नहीं? है? कुछ नहीं कहाँ, कहा न? संसार का कारण है। घोर संसार का कारण है। आहाहा! गजब बात है। शुभभाव घोर संसार का कारण और शुभभाव तेरा चाहे जो बाहर में हो, मन्दिर के लिये, इसके लिये... सज्जाय के लिये... आहाहा! इतना ध्यान रखना कि वह संसार का घोर कारण है। वह संसार के अभाव के कारण में बिल्कुल सहायक नहीं है। आहाहा! यह २६५ (श्लोक) पूरा हुआ।

श्लोक-२६६

(वसंततिलका)

भीतिं विहाय पशुभिर्मनुजैः कृतां तं,
मुक्त्वा मुनिः सकललौकिकजल्पजालम् ।
आत्म-प्रवाद-कुशलः परमात्म-वेदी,
प्राप्नोति नित्य-सुखदं निज-तत्त्व-मेकम् ॥२६६॥

(वीरछन्द)

आत्मप्रवाद कुशल ज्ञानी मुनि नर-पशुओं कृतभय को छोड़ ।
लौकिक वचन समूह तजे, गहते शाश्वत सुखमय निज को ॥२६६॥

[श्लोकार्थः] आत्मप्रवाद में (आत्मप्रवाद नामक श्रुत में) कुशल ऐसा परमात्मज्ञानी मुनि, पशुजनों द्वारा किये जानेवाले भय को छोड़कर और उस (प्रसिद्ध) सकल लौकिक जल्पजाल को (वचनसमूह को) तजकर, शाश्वतसुखदायक एक निज तत्त्व को प्राप्त होता है ॥२६६॥

श्लोक - २६६ पर प्रवचन

२६६ कलश

भीतिं विहाय पशुभिर्मनुजैः कृतां तं,
मुक्त्वा मुनिः सकललौकिकजल्पजालम् ।
आत्म-प्रवाद-कुशलः परमात्म-वेदी,
प्राप्नोति नित्य-सुखदं निज-तत्त्व-मेकम् ॥२६६॥

श्लोकार्थः : आत्मप्रवाद में (आत्मप्रवाद नामक श्रुत में)... जिसमें आत्मा का कथन है, ऐसे श्रुत में कुशल... ऐसा जो कुशल (आत्मप्रवाद नामक श्रुत में) कुशल... आहाहा! ऐसा परमात्मज्ञानी मुनि पशुजनों... परम आत्मज्ञानी-परमस्वरूप आत्मा, अनन्त

आनन्द और अनन्त शान्ति का सागर; राग की क्रियासहित, जिस भाव से तीर्थकरगोत्र बँधे, उस राग की क्रिया से रहित प्रभु आत्मा है। आहाहा! **ऐसा परमात्मज्ञानी...** परम आत्मज्ञानी। परम आत्मज्ञानी। आहाहा! **मुनि पशुजनों द्वारा...** ऐसे मुनि पशुजन द्वारा। पशुजनों कहा है। आहाहा! धर्म को समझते नहीं और विरोध करते हैं, वे सब ढोर जैसे हैं, पशु जैसे हैं।

पशुजनों द्वारा किये जानेवाले भय को छोड़कर... आहाहा! मुनि हैं, छद्मस्थ हैं। कोई दोष लगा हो और कोई देख जाए तो बाहर प्रसिद्ध करे और निन्दा हो तो भय करना नहीं। इस दुनिया का भय करना नहीं। आहाहा! **पशुजनों द्वारा किये जानेवाले भय को छोड़कर और उस (प्रसिद्ध) सकल लौकिक जल्पजाल को...** आहाहा! **उस (प्रसिद्ध) सकल लौकिक जल्पजाल को (वचनसमूह को)...** यह पहले में आ गया है। उसे यहाँ जल्पजाल कहा है। वचन का जाल, जल्पजाल। आहाहा! भगवान तो वाणी को स्पर्शा ही नहीं है। आत्मा वाणी के परमाणु को स्पर्शता ही नहीं है। आत्मा अनादि से होने पर भी कर्म और वाणी को स्पर्शा ही नहीं है, स्पर्शा ही नहीं है। आहाहा! क्योंकि वह सब जड़ है। प्रभु चैतन्य है। दो के बीच अत्यन्त अभाव, अभाव का बीच में पर्वत-गढ़ पड़ा है। दो के बीच में अभावभाव का, अभावभाव का बड़ा गढ़ पड़ा है। आहाहा!

क्या कहा? भगवान आत्मा और पशुजनों द्वारा कही हुई वाणी कि स्वयं वाणी का समूह... आहाहा! वह **उस (प्रसिद्ध) सकल लौकिक जल्पजाल को (वचनसमूह को) तजकर,**... आहाहा! यह व्यवहार से कथन है। तजकर, यह भी व्यवहार से कथन है। ज्ञानानन्दस्वरूप में स्थिर हो जाना, तब वचन होता नहीं, राग की उत्पत्ति होती नहीं, उसको उसने छोड़ा ऐसा कहने में आता है। कथन की शैली तो अनेक प्रकार से होती है, परन्तु उसका मर्म अलग प्रकार का होता है। वचन को छोड़कर, जड़ को छोड़कर। जड़ को ग्रहण कब किया था, उसे छोड़ना है? जड़ को स्पर्श भी नहीं किया है। (समयसार की) तीसरी गाथा में तो ऐसा कहा है। समयसार तीसरी (गाथा) आत्मा पर को स्पर्श भी नहीं करता अपने अतिरिक्त परद्रव्य को चुम्बन भी नहीं करता, छूता भी नहीं। कर्म को स्पर्श नहीं किया, शरीर को स्पर्श नहीं किया अभी तक। अनन्त काल हुआ। भगवान आत्मा ने वाणी को स्पर्श नहीं किया, कर्म को स्पर्श नहीं किया। आहाहा! शरीर को स्पर्श नहीं किया, वाणी को स्पर्श नहीं किया। जड़-मन को भी स्पर्श नहीं किया। आहाहा! ऐसा है। पाटनीजी! मार्ग ऐसा है। आहाहा!

प्रभु तो भगवानस्वरूप, परमेश्वरस्वरूप चैतन्यमूर्ति है। वह तो कभी राग को, कर्म को, शरीर को, वाणी को हुआ भी नहीं है, स्पर्शा नहीं है, चुम्बन नहीं किया, यह समयसार की तीसरी गाथा है। प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने धर्म को चुम्बन करता है। धर्म अर्थात् स्वभाव। गुण और पर्याय निर्मल स्वभाव को चुम्बन करता है परन्तु दूसरे द्रव्य की किसी भी पर्याय को, गुण-द्रव्य को तो चुम्बन न करे परन्तु पर की पर्याय को दूसरा द्रव्य चुम्बन-स्पर्शन नहीं करता। आहाहा! गजब बात है। इस हाथ को शरीर छुआ नहीं, शरीर को अन्दर आत्मा छुआ नहीं। आत्मा को शरीर छुआ ही नहीं। आहाहा! परमात्मज्ञानी मुनि यह सब वाणी आदि को छोड़कर, पशुजनों द्वारा किये जानेवाले भय को छोड़कर और उस (प्रसिद्ध) सकल लौकिक जल्पजाल... आहाहा! स्वयं तो लिखते हैं। लिखने की क्रिया भले हो। आत्मा से नहीं लिखा जा सकता। आत्मा उसे स्पर्श नहीं करता। वाणी के, जड़ के परमाणु में क्रमबद्ध होने का-भाषा होने का पुद्गल में काल है, इसलिए वचनवर्गणा भाषारूप होती है। आत्मा उसे स्पर्श नहीं करता और आत्मा भाषा नहीं करता। आहाहा! लो! हसमुखभाई! अब पूरे दिन करना, पैसा और धूलधाम। धूलधाम। आहाहा! एक द्रव्य के अपने गुण और पर्याय उसे स्पर्श करते हैं परन्तु दूसरे द्रव्य की पर्याय को दूसरा द्रव्य स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। आहाहा! तो फिर वाणी को आत्मा छूता नहीं तो यह वाणी है, वह कहते हैं... आहाहा! सकल लौकिक जल्पजाल को (वचनसमूह को) तजकर, शाश्वतसुखदायक... शाश्वत सुख का देनेवाला भगवान एक निज तत्त्व को प्राप्त होता है। आहाहा! वीतराग को पाते हैं और पंच परमेष्ठी को पाते हैं, यह नहीं। परद्रव्य को पाते हैं, वह राग है। आहाहा! ऐसा करके निज तत्त्व को प्राप्त करते हैं। आहाहा! वचन की रचना छोड़कर... आहाहा! पशुजनों द्वारा भय होता हो, विरोध करते हों, उसे भी छोड़कर... आहाहा! शाश्वत् सुख देनेवाले, कायम आनन्द में रहनेवाले, कायम आनन्द में रहनेवाला प्रभु, आनन्द का धाम नित्यानन्द शाश्वत् टंकोत्कीर्ण वस्तु भगवान आत्मा को प्राप्त करते हैं।

ऐसे शाश्वतसुखदायक एक निज तत्त्व... ऐसा सुख का देनेवाला एक निज तत्त्व। दो तत्त्व दूसरे नहीं। आहाहा! यह एक-एक श्लोक भी गजब है न! अपना भगवान आत्मा निज तत्त्व अन्दर एकरूप प्रभु विराजता है। अनन्त गुण भले हैं, परन्तु अभेदरूप से वे एकरूप हैं। ऐसे एकरूप तत्त्व को प्राप्त करते हैं। है? शाश्वतसुखदायक एक निज

तत्त्व... वापस वह निज तत्त्व । पर परमात्मा वीतराग की भेंट हो, वह नहीं । आहाहा ! कलश तो कलश ! अमृत के कलश भरे हैं !! आहाहा ! दूसरे का करना है और दूसरे से गिनाने में गिनवाना है, ऐसों को तो इसमें अवकाश नहीं है ।

ऐसी स्थिति करनेवाला अविचल शाश्वत सुखदायक **एक निज तत्त्व को प्राप्त होता है** । यह सार है । आहाहा ! परतत्त्व का... आत्मा के निज तत्त्व के अतिरिक्त परतत्त्व चाहे तो वीतराग की महिमा की, प्रशंसा की वाणी हो या शास्त्र के शब्द हों... आहाहा ! वे सब परद्रव्य हैं । उन्हें छोड़कर निज आत्मतत्त्व को प्राप्त करता है । एक निज तत्त्व को.. बाहर के अनेक तत्त्व परमात्मा, पशु आदि या परमात्मा पंच परमेष्ठी, वे भी पर में जाते हैं । उनका लक्ष्य करने से भी राग होता है । आहाहा ! इसमें पहले क्या करना ? हरिभाई ! आहाहा !

यह तो कलश है । पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि । मुनि का (कलश है) । यह कहते हैं कि निज तत्त्व तो एकदम निराला पड़ा है । जिसे संसार स्पर्शा नहीं है, जिसे राग स्पर्शा नहीं है, ऐसा वह तत्त्व है । एक समय की पर्याय में भले हो, परन्तु वह पर्याय द्रव्य को स्पर्शा नहीं । आहाहा ! ऐसे द्रव्य को—उस तत्त्व को प्राप्त करता है । ऐसी वचन रचना और ऐसे भय से पृथक् पड़ता हुआ (निज तत्त्व को पाता है) । आहाहा ! यह तो बाबा हो, दुकान छोड़कर बैठे तो हो । ऐसे होता होगा ? दुकान छोड़कर बैठा कहाँ है ? पर का त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही नहीं । आत्मा में त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति है । परवस्तु का त्याग और परवस्तु का ग्रहण, वह तो शून्य है । आहाहा ! मात्र उस सम्बन्धी का अन्दर राग से ऐसे बोलना और ऐसे करना... आहाहा ! वीतरागस्वरूपी भगवान आत्मा में उस राग का कण मैल और दुःख है, उसे छोड़कर सुखदायक ऐसा जो भगवान आत्मा एक निज तत्त्व । एक ही तत्त्व, दूसरा तत्त्व नहीं । परमात्मा, परमेश्वर और पंच परमेष्ठी भी नहीं । आहाहा ! **एक निज तत्त्व को प्राप्त होता है** । लो ! यह इसका सार है । आहाहा ! कठिन लगे ।

पहले क्या करना ? पहले यह (करना) अन्तिम क्या ? कि तू पूर्ण प्राप्त कर जा वह । पहला यह करना और अन्तिम यह कि तू उस तत्त्व को प्राप्त कर जा । दूसरा कुछ है नहीं । आहाहा ! अरे रे ! यह बात सुनी न हो । व्रत करो, अपवास करो, यह करो... यह करो... यह करो... यह करो... कर्ताबुद्धि की क्रिया में रोकनेवाले संसार को भटकाने में फलते हैं । वहाँ संसार फलता है । आहाहा !

यहाँ तो प्रशस्तराग रचना को घोर संसार कहा। अहा! कहा या नहीं? आहाहा! घोर संसार है। आहाहा! मुनि को जगत की दरकार कहाँ पड़ी है? जगत को यह जँचेगा या इसमें खलबलाहट हो जाएगी, उन्हें कहाँ पड़ी है? आहाहा! और ऐसी बात अन्यत्र दिगम्बर सन्तों के सिवाय कहीं नहीं है। श्वेताम्बर, स्थानकवासी और अन्यमत में कहीं यह बात नहीं है। सर्वत्र एकदम मिथ्यात्व की बात है। आहाहा! कठिन लगे, क्या हो? अनादि सनातन सन्त अनादि दिगम्बर सन्त हो गये हैं, वे अनादि से यह बात करते आये हैं। यह कहीं स्वयं अकेले करते हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! अनादि से यह बात चली आ रही है। अनन्त काल ऐसी की ऐसी रहनेवाली है। आहाहा! तू भी अनन्त काल का है न! प्रभु! तो यह स्थिति प्राप्त करके तू भी अनन्त काल रहनेवाला है। आहाहा! कहो, रतिभाई! ऐसी बात कब सुनी थी?

मुमुक्षु : कोई सुनानेवाला ही कहाँ था!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मूर्ति करो-स्थापित करो। प्रतिदिन करो आरती... क्या कहलाता है? स्तुति, भजन और भक्ति। आहाहा!

यहाँ तो तीन लोक के नाथ का पुकार है (कि) यह शुभविकल्प उठता है, वह घोर संसार है। तीन लोक के नाथ के पवित्र से अत्यन्त विरुद्ध भाव शुभभाव है। जब प्रभु में संसार का त्रिकाली अभाव है, तब राग में संसार का सद्भाव पूर्ण भरा है। आहाहा! कलश बहुत अच्छे आये। दोनों सरस कलश आये। पैसा-बैसा तो सबका यहाँ शून्य लगाया। पैसे से ऐसा होगा और पैसे से ऐसा होगा, पैसेवाले हों तो धर्म के स्थानक बने, धर्म बने, मन्दिर बने, पुस्तकें बने। आहाहा! प्रभु की वाणी दुनिया से अलग प्रकार की है। आहाहा!

तू है, वह हो और नहीं, उसे जाने दे। आहाहा! इतनी बात है। तू जैसा ज्ञानानन्द वीतरागमूर्ति प्रभु है, वैसी श्रद्धा करके हो, उससे विरुद्ध विकल्पमात्र घोर संसार का कारण है। संसार, जो अन्दर वस्तु में नहीं, उस घोर संसार का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : रिश्तेदार को पत्र लिखना, वह भी घोर संसार।

पूज्य गुरुदेवश्री : पत्र-बत्र लिखना, वह भी यह। आहाहा!

यहाँ तो एक अक्षर अनन्त गुण का भरपूर है, उसकी वह क्रमबद्ध की पर्याय

उसकी होनेवाली उस काल में होती है। उसके बदले यह कहे कि मुझसे यह वाणी रची जाती है, वह मिथ्यादृष्टि है, उसे तत्त्व की दृष्टि की खबर नहीं है। आहाहा! और छियानवें हजार स्त्री का भोगनेवाला कहलाये कि भोगता है। वास्तव में तो उन्हें स्पर्श भी नहीं करता। वह क्रिया होती है उसे वह जानता है। आहाहा! वह क्रिया होती है, राग आया तो उसकी क्रिया को जानता है। आहाहा! और चक्रवर्ती भी छियानवें हजार स्त्री और छियानवें करोड़ सैनिक... आहाहा! उसका भोजन ऐसा कि बत्तीस ग्रास (में से) एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक खा नहीं सकते। ऐसा बत्तीस ग्रास का आहार, तो भी कहते हैं कि वह स्पर्श नहीं करता। उस आहार को स्पर्श ही नहीं करता। आहाहा! उस आहार की ओर के विकल्प का स्वयं को स्वामी नहीं मानता। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसा कभी सुना भी नहीं होगा कहीं। आहाहा! श्लोक बहुत ऊँचे, बहुत सरस आये हैं। आहाहा! १५५ गाथा (पूरी) हुई।

गाथा-१५६

णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी ।
 तम्हा वयण-विवादं सग-पर-समएहिं वज्जिज्जो ॥१५६॥
 नानाजीवा नानाकर्म नानाविधा भवेल्लब्धिः ।
 तस्माद्वचन-विवादः स्व-पर-समयैर्वर्जनीयः ॥१५६॥

वाग्विषयव्यापारनिवृत्तिहेतूपन्यासोऽयम् । जीवा हि नानाविधाः मुक्ता अमुक्ताः भव्या
 अभव्याश्च, सन्सारिणः त्रसाः स्थावराः । द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियसञ्चयसञ्जिभेदात् पञ्च
 त्रसाः, पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः । भाविकाले स्वभावानन्तचतुष्टयात्मकसहज-
 ज्ञानादिगुणैः भवनयोग्या भव्याः, एतेषां विपरीता ह्यभव्याः ।

कर्म नानाविधं द्रव्यभावनोकर्मभेदात्, अथवा मूलोत्तरप्रकृतिभेदाच्च, अथ तीव्रतर-
 तीव्रमन्दमन्दतरोदयभेदाद्वा । जीवानां सुखादिप्राप्तेर्लब्धिः कालकरणोपदेशोपशमप्रायोग्यता-
 भेदात् पञ्चधा । ततः परमार्थवेदिभिः स्वपरसमयेषु वादो न कर्तव्य इति ।

हैं जीव नाना, कर्म नाना, लब्धि नाना विध कही ।

अतएव ही निज-पर समय के साथ वर्जित वाद भी ॥१५६॥

अन्वयार्थ : [नानाजीवः] नाना प्रकार के जीव हैं, [नानाकर्म] नाना प्रकार
 का कर्म है, [नानाविधा लब्धिः भवेत्] नाना प्रकार की लब्धि है; [तस्मात्] इसलिए
 [स्वपरसमयैः] स्वसमयों तथा परसमयों के साथ (स्वधर्मियों तथा परधर्मियों के
 साथ) [वचनविवादः] वचनविवाद [वर्जनीयः] वर्जनेयोग्य है ।

टीका : यह वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्ति के हेतु का कथन है (अर्थात्
 वचनविवाद किसलिए छोड़नेयोग्य है, उसका कारण यहाँ कहा है) ।

जीव नाना प्रकार के हैं : मुक्त हैं और अमुक्त, भव्य और अभव्य, संसारी—त्रस

और स्थावर। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा (पंचेन्द्रिय) संज्ञी तथा (पंचेन्द्रिय) असंज्ञी ऐसे भेदों के कारण त्रस जीव पाँच प्रकार के हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति यह (पाँच प्रकार के) स्थावर जीव हैं। भविष्य काल में स्वभाव-अनन्त चतुष्टयात्मक सहजज्ञानादि गुणोंरूप से *भवन के योग्य (जीव) वे भव्य हैं; उनसे विपरीत (जीव) वे वास्तव में अभव्य हैं। द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म ऐसे भेदों के कारण, अथवा (आठ) मूल प्रकृति और (एक सौ अड़तालीस) उत्तर प्रकृतिरूप भेदों के कारण, अथवा तीव्रतर, तीव्र, मन्द और मन्दतर उदयभेदों के कारण, कर्म नाना प्रकार का है। जीवों को सुखादि की प्राप्तिरूप लब्धि काल, करण, उपदेश, उपशम और प्रायोग्यतारूप भेदों के कारण पाँच प्रकार की है। इसलिए परमार्थ के जाननेवालों को स्वसमयों तथा परसमयों के साथ वाद करने योग्य नहीं है।

[भावार्थः] जगत में जीव, उनके कर्म, उनकी लब्धियाँ आदि अनेक प्रकार के हैं; इसलिए सर्व जीव समान विचारों के हों, ऐसा होना असम्भव है। इसलिए पर जीवों को समझा देने की आकुलता करना योग्य नहीं है। स्वात्मावलम्बनरूप निज हित में प्रमाद न हो, इस प्रकार रहना ही कर्तव्य है।

गाथा - १५६ पर प्रवचन

अब १५६ (गाथा)

णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी ।

तम्हा वयण-विवादं सग-पर-समएहिं वज्जिज्जो ॥१५६॥

हैं जीव नाना, कर्म नाना, लब्धि नाना विध कही ।

अतएव ही निज-पर समय के साथ वर्जित वाद भी ॥१५६॥

टीका : आहाहा! यह वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्ति के हेतु का कथन है... अपनी बात सत्य है, इसलिए स्वसमय में भी उसके साथ चर्चा-वाद-विवाद करके स्थापित करना, यह रहने देना, बापू! आहाहा! यह नहीं जँचेगी। सारांश कहते हैं।

* भवन = परिणमन; होना सो।

वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्ति के हेतु का कथन है (अर्थात् वचनविवाद किसलिए छोड़नेयोग्य है, उसका कारण यहाँ कहा है)।

जीव नाना प्रकार के हैं :... आहाहा ! तू किसे समान करने जाएगा ? सबके समान विचार हों, और सबकी समान श्रद्धा हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा ! तथापि ऐसा कहे, सब भगवान होओ। मैं तो भगवान होनेवाला हूँ, आठ कर्मरहित होनेवाला हूँ। द्रव्यसंग्रह में अवाय में यह कहा है। मैं तो आठ कर्मरहित होनेवाला हूँ, परन्तु सब आत्मा आठ कर्मरहित होओ। कोई भी अल्पज्ञ न रहो, कोई संसार में न रहो। आहाहा ! सब परमात्मा होओ क्योंकि तुम परमात्मा हो। नहीं हो और होना, ऐसा नहीं है। है, वैसा पर्याय में होना है। जैसा द्रव्य में स्वभाव और वस्तु सत्व है, उसी प्रकार पर्याय में प्रगट होना है। वह परमात्मा है। वह परमात्मा पर्याय में होना है। प्राप्त की प्राप्ति है। यह कहीं बाहर से परमात्मपना होता है, आता है – ऐसा नहीं है। कहो, हसमुखभाई ! ऐसी बातें हैं। आहाहा ! कठिन काम। पूरे दिन काम में फुरसत नहीं मिलती। उलझ गये, काम में उलझ गये। आहाहा !

जीव नाना प्रकार के हैं :... नाना अर्थात् अनेक प्रकार के हैं। मुक्त हैं और अमुक्त, ... सिद्ध हैं और संसारी हैं। उनमें भी वापस संसारी में भव्य और अभव्य, ... हैं। आहाहा ! संसारी—त्रस और स्थावर। हैं। वापस उन संसारियों में भी त्रस और स्थावर जाति है। आहाहा ! लट, चींटी, मकोड़ा, त्रस, मानव, तिर्यच, नारकी, देव, ये सब त्रस (जीव हैं) और एकेन्द्रिय, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, यह स्थावर (जीव हैं)। त्रस और स्थावर जीव हैं। तू सबको समान किस प्रकार करेगा ? तेरी भावना में सब रख। आहाहा ! सब किस प्रकार समान होंगे ? आहाहा ! अनन्त काल चला गया, अनन्त तीर्थकर चले गये, अनन्त तीर्थकरों ने उपदेश किया, तो भी एक शरीर के अनन्तवें भाग मोक्ष गये और निगोद के शरीर असंख्य चौबीसी के समय जितने हैं। असंख्य चौबीसी के समय जितने। उनमें मुक्ति में गये एक शरीर के अनन्तवें भाग और जाएँगे तो इतने। अरे रे ! यह विचार करने पर, बापू ! तू कहाँ आया है, भाई ! तू मनुष्यरूप से आया, भाई ! कहाँ आ चढ़ा है। आहाहा ! यह तो कल्प चिन्तामणि में आ पड़ा है।

छहढाला में तो ऐसा कहा है कि निगोद में से लट होवे तो भी चिन्तामणि रत्न है। आहाहा ! भाई ! तूने विचार नहीं किया। गत काल में से इतने में से छूटकर... आहाहा ! ऐसा

तुझे मनुष्यपना मिला और वह भी जैन परमेश्वर के मार्ग को सुनने के योग तक आया। आहाहा! आयुष्य लम्बा, निरोगता, सुनने की योग्यता... आहाहा! ऐसे तो अनन्तवें भाग मोक्ष गये, बापू! तू किसे बलजोरी से मोक्ष प्राप्त करायेगा? जिसकी योग्यता होगी, उसे होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने पास ज्ञान हो, वह दूसरे को ज्ञान न दे तो ज्ञानावरणीय का बन्ध पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं देता हूँ, ऐसा माने, वह ज्ञानावरणीय का बन्ध पड़ता है। दूसरा दे कौन और ले कौन? प्रभु! ज्ञान यहाँ है, उस ज्ञान का एक अंश भी यहाँ से हटता नहीं। किसे देना है? वाणी देना है? वाणी इसकी है? वाणी देना है? और वाणी से कुछ ज्ञान होता है? यह सुनने से कुछ ज्ञान होता है? आहाहा! इसकी तो उस समय की पर्याय का काल है, इससे यहाँ ज्ञान होता है। वाणी से नहीं। आहाहा! यह तो अलौकिक मार्ग है। सुनने को मिलना मुश्किल है। आहाहा! गजब बात है।

दिगम्बर सन्तों ने मोक्ष को हथेली पर ऐसे बताया है। तू मोक्षस्वरूप है न, प्रभु! आहाहा! तू मुक्तस्वरूप है। मुक्तस्वरूप है, ऐसा पर्याय में मुक्त हो। प्राप्त की प्राप्ति है। नहीं और होनेवाला, हो सके, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! इसके अतिरिक्त की दूसरी सभी बातें छोड़ दे। आहाहा! लप का लाकड़ा (विपरीतता) रखा हो और इससे ऐसा होगा... इससे ऐसा होगा। यह शास्त्र बनाये तो फिर दूसरे को ज्ञान होगा और मेरा नाम रहेगा, यह सब मिथ्यात्व की विपरीतता है। आहाहा! प्रभु! तू तो ज्ञानस्वरूप है न! ज्ञानस्वरूप क्या करे? जानने का काम करे या कुछ दूसरे का करने का करे? करे करने का, परन्तु क्या करने का? जानने का। राग का काम भी नहीं तो फिर वाणी-फाणी के कर्तव्य तो इसे है ही नहीं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! यह बात सुनना कठिन पड़ती है। आहाहा! कलश भी बहुत ऊँचा आया है। आहाहा!

वचनसम्बन्धी व्यापार की निवृत्ति के हेतु का कथन है (अर्थात् वचनविवाद किसलिए छोड़नेयोग्य है, उसका कारण यहाँ कहा है)। एक तो संसारी और मुक्त, दो जीव हैं और उनमें भी भव्य और अभव्य। आहाहा! अभव्य जीव कभी तीन काल में मुक्ति नहीं होगी, ऐसे जीव हैं, प्रभु! तू किसके साथ वाद करेगा? आहाहा! संसारी में तो त्रस

और स्थावर हैं। उनमें कभी अभी निगोद में से निकले नहीं, इतने अधिक जीव हैं। आहाहा! और बाहर निकले वे त्रस। वे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय... हैं, मनवाले हैं और कोई मनरहित हैं। ऐसे भेदों के कारण त्रस जीव पाँच प्रकार के हैं। आहाहा!

पृथ्वी,... के जीव हैं। यह पृथ्वी खोदने जाते हैं। एक मिट्टी के कण में असंख्य जीव हैं। आहाहा! पृथ्वी, जल,... है। पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं। आहाहा! तेज,... अग्नि। अग्नि में एक दियासलाई ऐसे सुलगे, उसमें असंख्य जीव हैं। वायु... पूरा लोक ठसाठस वायु से भरा हुआ है, खाली भाग है वह। आहाहा! वनस्पति,... आहाहा! यह (पाँच प्रकार के) स्थावर जीव हैं। आहाहा! णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।

भविष्य काल में स्वभाव-अनन्त चतुष्टयात्मक सहजज्ञानादि गुणोंरूप से भवन के योग्य (जीव), वे भव्य हैं;... आहाहा! भविष्य काल में स्वभाव अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और सुख, वीर्य—ऐसे चतुष्टयात्मक... आहाहा! सहजज्ञानादि गुणोंरूप... होने के योग्य हैं वे, परिणामन के योग्य ऐसे जीव भी हैं। आहाहा! वे भव्य हैं; उनसे विपरीत (जीव) वे वास्तव में अभव्य हैं। किसी के समझाने से समझेंगे नहीं, ऐसे जीव भी हैं। आहाहा!

उस महिला ने अभी ऐसा लिखा है। श्रुतसागर साधु है, वह ऐसा कहते हैं कि अभी शुभभाव ही होता है। ऐसी प्ररूपणा की है। आज अखबार में आया है और वह बाई ज्ञानमती और ऐसा कहती है कि हम भव्य हैं या अभव्य? काललब्धि पकी है या नहीं? - वह भगवान जाने। अपने को क्या खबर पड़े? अर.र.र..! ऐसी बातें वेश पहनकर करनेवाले और सुननेवाले! हम भव्य हैं या अभव्य, यह केवली जाने। अर..र..र..! तो फिर यह शास्त्र की एक भी सच्ची बात तुम्हारे पास सुनने जैसी नहीं, क्योंकि तुम्हें तो अभी भव्य और अभव्य की शंका है। ऐसा अखबार में आया है। आहाहा! अर..र..र..! प्रभु! प्रभु! क्या हो?

अनेक जीव की जाति। वह कहते हैं न, वे भव्य हैं; उनसे विपरीत (जीव) वे वास्तव में अभव्य हैं। उनमें वापस द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म ऐसे भेदों के

कारण, अथवा (आठ) मूल प्रकृति और (एक सौ अड़तालीस) उत्तर प्रकृतिरूप भेदों के कारण,... ऐसे कर्म भी किसी को किस प्रकार के, किस प्रकार के, किस प्रकार के होते हैं। किसी को तीव्रतर, तीव्र, मन्द और मन्दतर उदयभेदों के कारण, कर्म नाना प्रकार का है। आहाहा! ऐसे जीवों में अब ऐसे भेद हैं, उनमें तू किसे (समझायेगा) ? तेरे विचार प्रमाण सबको समान करना चाहेगा तो किस प्रकार होगा ? विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)